अध्याय-2
महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी और भारतीय महिला आन्दोलन

इस अध्याय में समाज सुधार आन्दोलन से लेकर स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान उठाए गए महिला मुद्दों पर चर्चा की गई है। इसमें विभिन्न महिला संगठनों द्वारा महिलाओं के लिए किए गए कार्यों के साथ-साथ स्वतन्त्रता आन्दोलन में महिलाओं को दी गई भूमिका का भी विश्लेषण किया गया है। साथ ही स्वतन्त्रता आन्दोलन के बाद महिला आन्दोलन में आए ठहराव और इस दौरान उठाए गए महिला प्रश्नों पर भी विचार किया गया है।

महिला आन्दोलन की पहली झलक पश्चिमी देशों में मताधिकार के लिए किए गए संघर्ष में दिखायी देनी शुरू हुई थी। मताधिकार के लिए महिलाओं के संगठित संघर्ष ने मताधिकार को एक राजनीतिक अधिकार के रूप में अत्यधिक महत्व प्रदान किया और इसे लोकतान्त्रिक हिस्सेदारी के एक महत्वपूर्ण हिस्से के तौर पर माना। आज हम सार्वभौमिक और समान मताधिकार के विषय में सोचने के आदी हो चुके है, लेकिन इस बात को समझने की जरूरत है कि मताधिकार से आज जो हमारा तात्पर्य है आरंभिक दिनों में ऐसा नहीं था। इस अधिकार के विस्तार को जनसंख्या के सभी हिस्सों तक पहुँचने में लम्बे संघर्ष के दौर से गुजरना पड़ा। महिलाओं के द्वारा मताधिकार के लिए संघर्ष तो विशेष तौर से ज्यादा लम्बा और कठिन था। यूरोप में मताधिकार के लोकतांत्रिकरण में लगभग सौ वर्ष लग गए।

1848 में सर्वप्रथम फ्रांस में पुरुषों को मताधिकार दिया गया। इससे पहले किसी भी देश में पुरुषों के लिए सार्वभौमिक मताधिकार की व्यवस्था नहीं थी। जर्मनी, स्विट्जरलैंड और न्यूजीलैंड ने 1889 में पुरुष मताधिकार की व्यवस्था की थी। ज्यादातर देशों में यह व्यवस्था प्रथम विश्वयुद्ध के समय या उसके बाद लागू की गई। महिलाओं को मताधिकार पुरुषों की

अपेक्षा काफी देर से मिला। फ्रांस में 1789 में जब क्रान्तिकारियों ने नागरिकों के अधिकारों की घोषणा में सभी व्यक्तियों के लिए समानता की बात उठाई तब महिलाओं, जिन्हें पुरुषों के साथ निर्भरता के संबंध के रूप में देखा जाता था को कोई राजनीतिक अधिकार नहीं मिले। इस प्रकार फ्रांस की क्रान्ति ने प्रत्यक्ष रूप से जिस सहभागी और समानता पर आधारित सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण किया था वह महिलाओं के बहिष्करण पर टिका था। उस समय के प्रभुत्वशाली विचारों ने महिलाओं के नागरिक कार्य को घर की शान्ति भंग करने वाला कहकर नकार दिया।

जब 1791 में पुरुष घरेलू नौकरों को नागरिक अधिकार प्रदान किए गए, तब भी महिलाओं ने नागरिकता से वंचना का दर्द महसूस किया। ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका में भी महिलाओं को मताधिकार के लिए काफी लम्बा संघर्ष करना पड़ा। ब्रिटेन में महिलाओं को 1918 में सीमित मताधिकार प्रदान किया गया, जिसमें 30 साल और उससे अधिक उम्र की महिलाओं को मताधिकार प्राप्त हुआ। 1919 में महिलाओं को चुनाव के लिए खड़े होने का अधिकार मिला तथा 1928 में उन्हें पुरुषों के समान मताधिकार दिया गया।[1] अमेरिका में राजनीतिक अधिकारों के लिए महिलाओं के संघर्ष की शुरूआत 1830 में दास प्रथा की समाप्ति के लिए किए जा रहे आन्दोलन में हिस्सेदारी के साथ हुई और महिलाओं को मताधिकार 26 अगस्त 1920 को मिला।[2] द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद लोकतांत्रिक मताधिकार के सिद्धान्त को लगभग प्रत्येक यूरोपीय देश के द्वारा अपना लिया गया था। मुट्ठीभर देश इसका अपवाद रहे जैसे कि स्विटजरलैंड, जहाँ 1971 तक महिलाओं को वोट से वंचित रखा गया तथा स्पेन और पुर्तगाल में जहाँ खुले प्रतिद्वंद्वात्मक निर्वाचन 1970 के मध्य तक नहीं हो पाए।

---

1 अनुपमा रॉय, ''पश्चिम में नारी आन्दोलन'', मुख्य पुस्तक *नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे* (संपादित) साधना आर्य, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2000, पृष्ठ 66

2 *वही*, पृष्ठ 67

इस प्रकार महिलाओं को पूर्ण नागरिक अधिकार और बराबर राजनैतिक सहभागिता दिलाना महिला आन्दोलन के पहले चरण की सुप्रसिद्ध सफलता रही। 19वीं सदी के महिला आन्दोलन की प्रथम लहर की खास बात यह थी कि यह विश्वव्यापी लहर थी। महिला अधिकारों की मांग केवल यूरोप और उत्तरी अमेरिका के देशों-उपनिवेशों में ही नहीं, बल्कि पाश्चात्य जगत के बाहर दक्षिणी अमेरिका और एशिया में भी उभर रही थी। इस प्रकार महिलाओं द्वारा उनके समर्थन में आयोजित अनेक गतिविधियाँ दुनिया के कई भागों में उभरकर आ रही थी हालांकि अक्सर इन्हें एक दूसरे के बारे में कोई जानकारी नहीं होती थी।

20वीं सदी की शुरुआत होते-होते उत्तरी यूरोप के स्केंडिनेवियाई राष्ट्रों में स्त्री-पुरुष समानता को समर्पित कल्याणकारी राज्य का संस्थानीकरण हो चुका था जिससे यहाँ की महिलाओं को बराबरी के संघर्ष में पश्चिमी जगत के दूसरे देशों की महिलाओं से आगे निकलने का मौका मिला। यूरोप के बाकी देशों से अलग स्केंडिनेवियाई देशों ने दोनों विश्वयुद्धों में भाग नहीं लिया। इसके फलस्वरूप उन्हें अपने देश में 1920 के दशक में स्थापित स्त्री-पुरुष बराबरी व अन्य सामाजिक समानताओं के लिए प्रतिबद्ध समाजवादी कल्याणकारी राज्य को और विस्तृत तथा समृद्ध बनाने का अवसर मिला।[3]

1950 और 1960 के दशक में महिलाओं में नारीवादी चेतना और सक्रियता की एक नई लहर पैदा हुई जिससे महिला आन्दोलन के दूसरे चरण का प्रारम्भ हुआ। 1960 के दशक में अमरीका, यूरोप और लगभग सारे विश्व में विद्रोही तेवर वाले आन्दोलनों ने तूल पकड़ा। ब्रिटेन, फ्रांस, इटली और जर्मनी में छात्र आन्दोलन, नव-वाम तथा श्रमिक वर्ग के आन्दोलन विशेष रूप से प्रभावशाली रहे। हाँलाकि इन संघर्षों में भाग लेने से महिलाओं को काफी कुछ हासिल हुआ, परन्तु दूसरी तरफ इन आन्दोलनों में अपनी गौण भूमिका के बढ़ते एहसास ने

---

[3] मेरी जॉन, ''पश्चिम में समकालीन महिला आन्दोलन'', मुख्य पुस्तक *नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे*, (संपादित), *पूर्वोक्त*, पृष्ठ107-108

महिलाओं की राजनैतिक चेतना को और धारदार भी बनाया। आमतौर पर पुरुष आन्दोलनकारियों ने महिला आन्दोलनकारियों के मुद्दों को अधिक महत्व देने की मांग का समर्थन नहीं किया और कई बार उनकी चिंताओं का खुलेआम उपेक्षा और उपहास किया। इस तरह के नकारात्मक अनुभवों ने महिलाओं को एक अलग स्वायत्त आन्दोलन की परिकल्पना तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया जो सिर्फ महिलाओं द्वारा संचालित और उनके मुक्ति संघर्ष के लिए पूर्णतया समर्पित हो, और जिसमें पुरुष वर्चस्व, लिंगवाद, पितृसत्ता तथा महिलाओं के दमन जैसे मुद्दों पर गहनता से विचार किया जाए।

भारत में समाज सुधार आन्दोलन एवं महिला मुद्दे

भारत में महिला आन्दोलन का विकास समाज सुधार आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। 19वीं शताब्दी में महिला मुक्ति के लिए जिन वैधानिक सुधारों और उपायों को अपनाया गया, उन्हें महिला आन्दोलन के रूप में जाना गया हालांकि उस दौरान महिला मुद्दों का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई औपचारिक संगठन मौजूद नहीं था। हिन्दू समाज में महिलाओं की निम्न स्थिति को स्वीकार करते हुए पुरुष समाज सुधारकों ने ही महिला आन्दोलन को नेतृत्व प्रदान किया।

19वीं शताब्दी का भारतीय महिला आन्दोलन मुख्य रूप से उच्चवर्गीय और उच्चजातीय महिलाओं की समस्याओं से सम्बन्धित था। उच्चवर्गीय और उच्चजातीय हिन्दू महिलाओं का जीवनयापन, उनके विवाह और विधवापन से जुड़ी हुई परम्पराओं ने उस वक्त काफी ध्यान आकर्षित किया। उस समय के समाज-सुधारकों ने मुख्य रूप से महिला जीवन से जुड़े हुए तीन पहलुओं और समस्याओं पर अपना ध्यान केन्द्रित किया - महिला विवाह की उम्र, विधवा महिला का जीवन और पुर्नविवाह का अधिकार तथा महिला शिक्षा।[4]

[4] Vijay Agnew, *Elite women in Indian politics*, Vikas Publishing House, Delhi, 1986, p.13.

महिलाओं से जुड़ी हुई इन समस्याओं के लिए जहाँ एक तरफ सरकार द्वारा वैधानिक सुधार किए जाने पर जोर दिया गया वहीं दूसरी तरफ महिला जागृति पर भी जोर दिया गया जिसमें एक ''परिवर्तित महिला''[5] की बात की गई जो न सिर्फ भावनात्मक स्तर पर पुरुष के साथ सहयोग कर सके बल्कि महिलाओं की समस्याओं का भी प्रतिनिधित्व कर सके जिसका मुख्य उपाय या माध्यम औपचारिक शिक्षा थी। वास्तव में औपनिवेशिक काल में शिक्षा के प्रारम्भ ने ही अपने आप को आधुनिक कहने वाले पुरुषों को महिलाओं के लिए अपनाई जाने वाली बर्बरतापूर्ण परम्पराओं के लिए आईना दिखाने का काम किया। महिलाओं के विरुद्ध अपनाई जाने वाली इन परम्पराओं ने ही औपनिवेशिक शाासकों को भारत में रहने और महिलाओं के हितों का हितैषी बनने का नैतिक आधार प्रदान करके सभ्यता आन्दोलन चलाने का कारण भी प्रदान किया। इस प्रकार यह भी एक महत्वपूर्ण और रोचक बात है कि स्त्रियों के सरोकारों से संबंधित ऐसे अनेक मुद्दे जो उन्नीसवीं सदी के पूर्वाद्ध में नारी आन्दोलन का आधार बने, वे एक जैसी सोच वाले लोगों द्वारा शुरू किए गए परन्तु वे अलग-अलग तरह से विकसित हुए। हिन्दू समाज में भारतीय महिलाओं की दशा को सुधारने वाला आन्दोलन हालांकि धीमा था परन्तु वह लगातार जारी रहा।

भारत में स्त्रियों की दशा सुधारने के प्रारम्भिक प्रयास समाज सुधार आन्दोलन के अन्दर सती प्रथा के विरोध में दिखाई देने लगे थे। राजा राममोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होंने सती प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन चलाया। प्रारंभ में तो ब्रिटिश संसद सती विरोधी कानूनों को बनाने से यह कहकर बचती रही कि यह हिन्दू धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप होगा। बाद में जो कानून बनाए गए उनमें जबरन सती और स्वेच्छा से सती में अंतर करते हुए इसे कानूनी जामा पहनाने की कोशिश की गई। इसने सती प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन चलाने वालों को झकझोर कर रख दिया। 1817 में पंडित मृत्युंजय विद्यालंकार ने घोषणा की कि सती की

---

5 *Ibid.*, p.14.

कोई शास्त्रीय मान्यता नहीं है। इसके एक वर्ष बाद 1818 में बंगाल के तत्कालीन प्रांतीय गर्वनर जनरल विलियम बैंटिक ने प्रांत में सती पर रोक लगा दी और 1829 में जब वे भारत के गर्वनर जनरल बने तो उन्होंने सती उन्मूलन एक्ट पास किया।[6]

यदि सती उन्मूलन आन्दोलन स्त्रियों की दशा सुधारने के एक प्रयास के रूप में आगे बढ़ा तो स्त्रियों की शिक्षा का आन्दोलन दूसरा प्रयास था। लड़कियों की शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास 1820 में अंग्रेज और ईसाई मिशनरियों द्वारा किए गए थे।[7] जिससे डरकर बंगाल में हिन्दू और ब्राह्मण कन्याओं के लिए पाठशालाएँ खोली गई तथा स्त्रियों की शिक्षा का मुद्दा उदार हिन्दुओं, ब्राह्मणों और प्रगतिशील छात्रों के लिए आन्दोलन का विषय बन गया। जहाँ मिशनरी स्कूलों में गरीब लड़कियाँ पढ़ने आती थी वहीं इन नए स्कूलों में ऊँची जाति की लड़कियाँ पढ़ने गई।[8] पूणे में ज्योतिबा फूले ने अछूत लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले। परन्तु स्त्री शिक्षा की वकालत करने वाले अधिकांश समर्थकों का ऐसा विश्वास था कि स्त्रियों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे वो अपनी गृहस्थी में और परिपक्वता ला सके।[9] ताकि पति तथा बच्चे दोनों को लाभ मिले। ब्राह्मण कन्या पाठशालाओं, खासतौर से केशवचन्द्र सेन द्वारा चलाई जा रही कन्या पाठशालाओं में लड़कियों को खाना पकाने, सिलाई-कढ़ाई करने तथा सेवा-सुश्रूषा की शिक्षा दी जाती थी तथा इन कार्यों में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए लड़कियों को प्रोत्साहन तथा पुरस्कार भी प्रदान किए जाते थे। उस समय कम प्रभावशाली परन्तु कालान्तर में जबरदस्त महत्वपूर्ण बन कर उभरा एक विचार था - बच्चों के चरित्र निर्माण में माँ के रूप में स्त्रियों की भूमिका।

---

6 राधा कुमार, *स्त्री संघर्ष का इतिहास 1800-1990,* वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृष्ठ 26-27

7 *वही*, पृष्ठ 38

8 राधा कुमार में उद्धृत विनय घोष, ''द प्रेस इन बंगाल'', मुख्य पुस्तक *हिस्ट्री ऑफ बंगाल 1757-1905*, (संपादित) एन.के. सिन्हा, कलकत्ता, 1967, पृष्ठ 452

9 राधा कुमार में उद्धृत सुषमा सेन, ''*मैमोरिज ऑफ एन आक्टोजेनेरियन*'', कलकत्ता, एल्म प्रेस,1971, पृष्ठ 147

उस समय विधवा पुर्नविवाह की समस्या भी बहुत मुखर थी। अन्य समाज सुधारकों की भांति ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 1850 में विधवा पुर्नविवाह पर लगे प्रतिबंध को समाप्त करने के लिए अभियान चलाया, साथ ही उन्होंने बंगाली भाषा में एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें कहा गया कि विधवा पुर्नविवाह शास्त्र-सम्मत है। 1855 में विद्यासागर ने विधवा पुर्नविवाह के लिए कानून बनाने के लिए एक याचिका भारत के गर्वनर जनरल को दी, याचिका में दलील दी गई कि ऐसे अनेक हिन्दू थे जिन्होंने विधवा पुर्नविवाह पर अमल किया किन्तु अब वे ऐसा इसलिए नहीं कर सकते क्योंकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकार के अधीन अदालतों ने इसे गैर कानूनी घोषित कर दिया है। उसी वर्ष विद्याासगर की याचिका पर आधारित एक कानून का मसौदा विधान परिषद में जे.पी. ग्रान्ट द्वारा पेश किया गया। 1856 में विधवा पुर्नविवाह कानून पारित कर दिया गया किन्तु इसके परिणामस्वरूप बहुत ही कम पुर्नविवाह हुए। समाज सुधारकों ने खुद भी इसे एक 'मुर्दा पत्र' की संज्ञा दी। 1890 के दशक में यह तथ्य सामने आया कि विधवा पुर्नविवाह कानून बनने के बाद विगत 40 वर्षों में कुल 500 विधवा पुर्नविवाह हुए।[10]

इसके अलावा समाज सुधार आन्दोलन में स्त्रियों की स्थिति से सम्बन्धित एक अन्य आन्दोलन बाल विवाह से सम्बन्धित था। 19वीं शताब्दी में विवाह की औसत आयु 8 और 9 वर्ष थी हालांकि कुछ जातियों और क्षेत्रों में यह थोड़ी भिन्न थी। ज्यादातर सभी हिन्दू विवाह विवाहित जोड़े के माता-पिता द्वारा तय किए जाते थे। बाल-विवाह की प्रथा सदियों से हिन्दू समाज का हिस्सा थी। सरकार ने कम उम्र की बालिका की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए 1860 में एक कानून पास किया जिसमें कहा गया कि 10 वर्ष से कम आयु की बालिका के साथ संभोग को बलात्कार माना जाएगा। परन्तु यह कानून स्त्रियों को न के बराबर सुरक्षा प्रदान कर पाया।[11] इस प्रकार 19वीं सदी के अंतिम वर्षों में बहरम मालाबारी द्वारा इस मुद्दे

---

10 राधा कुमार, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 44

11 Vijay Agnew, *Op. cit.*, p.18-20.

को उठाए जाने से पूर्व इसके विरोध में कोई आन्दोलन नहीं चलाया गया तथा विवाह की उम्र बढ़ाने के लिए दी गई ज्यादातर दलीलों को सामाजिक तथा नैतिक आधार पर ठुकरा दिया गया। हिन्दू परिवार की परिभाषा स्त्री के अपने पति तथा बच्चों के साथ रहने की दृष्टि से की गई। बाल विवाह की रीति को मिटाने से संयुक्त परिवार तथा जाति व्यवस्था के चरमरा जाने का डर था।[12] इस बहस में स्त्रियों के कूदने से यह और भी गर्म हो गई। कलकत्ता की महिला चिकित्सकों ने विवाह की उम्र बढ़ाने के लिए समाज सुधारकों द्वारा दिए जा रहे तर्कों का समर्थन किया तथा एक हजार छह सौ हिन्दू स्त्रियों ने कानूनी सुधार लागू करने के लिए महारानी विक्टोरिया के सम्मुख 1890 में एक याचिका प्रस्तुत की। जिसके फलस्वरूप संभोग के लिए सहमति की उम्र विवाहित स्त्री के लिए 12 वर्ष और अविवाहित के लिए 14 वर्ष निर्धारित कर दी गई। 1929 में महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए हरिविलास शारदा द्वारा स्त्री विवाह की उम्र को 14 वर्ष करने के लिए एक विधेयक प्रस्तावित किया गया। यह महिलाओं के लिए किया गया सबसे नया सुधार था।[13]

इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के आखिर तक समाज सुधार आन्दोलनों का असर दिखाई देने लगा था। हालांकि रमाबाई[14] सरीखे व्यक्तिगत विद्रोह तब भी नाममात्र को ही दिखाई पड़े परन्तु सार्वजनिक जीवन में विद्रोही स्त्रियों की संख्या में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। जिसमें हम रसुन्दरी देवी का उदाहरण ले सकते है जिन्होंने अपने स्वयं के प्रयत्नों द्वारा शिक्षा अर्जित की तथा आत्मकथा लिखने वाली पहली भारतीय महिला बनी। इसके बाद विशेष रूप

---

12 राधा कुमार में उद्धृत विनय घोष, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 408

13 Vijay Agnew, *Op. cit.*, p.22.

14 पंडिता रमाबाई एक विधवा स्त्री थी उन्हें पहली महिला प्रचारिका और महिला हितेषी होने का गौरव प्राप्त है। उन्होंने 1887 में 'विधवा समस्या' पर अपनी पुस्तक 'The High Caste Women' के द्वारा ध्यान आकर्षित किया था तथा विधवाओं के लिए उनके द्वारा स्थापित शारदा सदन टालस्टाय के आत्म समुदाय के आदर्श की अवधारणा से प्रेरित था।

से बंगाली महिलाओं ने तेजी से प्रगति की। निरूपमा देवी एवं अनुरूपा देवी जैसी प्रतिष्ठित उपन्यास लेखिकाओं का उदाहरण बंगाली साहित्य में दिया जाने लगा। यह बात अलग है कि उनके कृतित्व को 'हल्का' तथा मात्र 'मनोरंजक' कहकर उसकी उपेक्षा की गई। महाराष्ट्र की पहली महिला उपन्यासकार काशीबाई कानितकर ने 1890 के दशक में लेखन प्रारंभ किया तथा ठीक उसी समय महाराष्ट्र की पहली महिला डॉक्टर आनंदीबाई जोशी ने अपनी शिक्षा पूरी की। 1883 में कादम्बिनी बासु और चन्द्रमुखी बासु ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक की शिक्षा प्राप्त की, परन्तु महिला शिक्षा मुख्य रूप से बम्बई, पूणे और मद्रास जैसे शहरी क्षेत्रों तक सीमित थी। इस ''परिवर्तित महिला'' ने 1880 के दशक में आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया था और अपनी अधीनता की स्थिति के लिए जिम्मेदार कारकों पर प्रश्न करने लग गई थी। प्रगति के इन लक्षणों के बावजूद जिस माहौल में ये महिलाएँ रहती थी वह बड़ा रूखा एवं असहनीय था। एक बार की बात है, काशीबाई कानितकर तथा आनंदीबाई जोशी – दोनों सहेलियाँ जब पहली बार जूते पहनकर तथा छाता लेकर बाहर निकली तो उन पर यह कहकर गलियों में पत्थर बरसाए गए कि उन्होंने पुरुष अधिकार वाले प्रतीकों को अपनाकर उनका अपमान करने की हिमाकत की है। 1882 में एक युवा लेखिका ताराबाई शिन्दे ने अपनी पुस्तक ''स्त्री–पुरुष तुलना'' में ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक व्यवस्था की कटु आलोचना की। इस पुस्तक की भावनाएँ परम्परागत थी लेकिन फिर भी सुधारवादियों के अन्दर सत्यशोधक समाज जैसे सुधारवादी संगठन में भी पुस्तक का बड़ा तिरस्कार हुआ।[15]

इस प्रकार हम पाते है कि समाज सुधार आन्दोलन में स्त्रियों की जीवन दशा सुधारने की आवश्यकता इसलिए नहीं महसूस हुई कि वे बहुत कठिन दौर से गुजर रही थीं, बल्कि उनकी दशा में सुधार उनके पति तथा बच्चों के लिए भी जरूरी था। यह विचार बड़े प्रभावशाली तरीके से उभरा कि स्त्री की भूमिका माँ के रूप में अधिक स्वीकार्य है। इसके पक्ष में तर्क देते हुए कहा

---

[15] राधा कुमार, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 78-79

गया कि ''जिन स्थितियों में स्त्रियाँ शिशुओं को जन्म देती हैं तथा जिन परिस्थितियों में बच्चे पलते हैं, वे इतनी दयनीय हैं कि 'भारतीय मूल' पूरी तरह 'विकृत' हो जाता है। रुग्ण बच्चे पैदा होते हैं तथा आगे चलकर वे जर्जर युवा के रूप में दिखाई पड़ते हैं। माताओं और बच्चों की उपेक्षा से भारतीयों की एक पूरी पीढ़ी 'उद्यमशीलता' खो चुकी है, इसीलिए भारत को अँग्रेजों का गुलाम बनना पड़ा। अतः भारतीय राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि उसके बच्चे उत्तम परिस्थितियों में जन्म लेकर पले-बढ़ें।''[16]

राष्ट्रीय आन्दोलन में महिला भागीदारी का पहला दौर

इन्हीं वर्षों के दौरान महिलाओं ने राष्ट्रवादी आन्दोलनों एवं संगठनों में भी भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। हालांकि काफी हद तक उन्हें पुरुषों के विरोध का सामना भी करना पड़ा। सन् 1889 के कांग्रेस के बम्बई सत्र में कम से कम दस महिला प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया। इस अधिवेशन में महिलाओं को दरी पर बैठने की अनुमति तो दी गई परन्तु उन्हे प्रस्तावों पर बोलने तथा मत देने की इजाजत नही दी गई।[17] एक लेखक ने 10 वर्ष बाद की तिथि का उल्लेख करते हुए कहा है कि कांग्रेस अधिवेशन में बोलने वाली प्रथम महिला श्रीमती कादिम्बनीबाई गांगुली थी जिन्होंने सन् 1900 में कलकत्ता में सम्पन्न कांग्रेस के 16वें अधिवेशन में अध्यक्ष को धन्यवाद देने की रस्म निभाई।[18]

सन् 1905-08 के दौरान बंगाल में चले स्वदेशी आन्दोलन में बड़े पैमाने पर राष्ट्रवादी गतिविधियों में महिलाओं की भूमिका की शुरूआत दिखाई पड़ती है। अपने दौर की सबसे जुझारू राष्ट्रवादी महिला सरला देवी घोषाल, जिन्होंने 'भारती' के संपादक के रूप में 1895 में पदभार ग्रहण किया। उन्होंने अपनी पत्रिका के जरिए युवाओं को 'भौतिक संस्कृति' में लिप्त होने से

---

16 *वही*, पृष्ठ 81

17 Seeta Ram Singh, *Nationalism and Social Reform in India 1885-1992*, Ranjeet Prints and Publishers, Delhi, 1995, p.206.

18 *Ibid*., p.207.

बचने तथा भारतीय स्त्रियों का अंग्रेज सिपाहियों द्वारा गलियों तथा थानों में बलात्कार किए जाने से रक्षा करने के लिए प्रेरित करना शुरू किया।[19] अगस्त सन् 1905 के बाद स्वदेशी आन्दोलन में स्त्रियों की सहभागिता की खबरें आने लगी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्रियों को राष्ट्रवादी आन्दोलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रारम्भिक कदम इसी दौरान उठाए गए। चाहे छोटे पैमाने पर ही सही, स्त्रियों को राष्ट्रवादी आन्दोलनों में शामिल होने के लिए इसलिए तैयार किया गया क्योंकि वे राष्ट्रवादियों की पत्नियाँ, बहनें तथा पुत्रियाँ थी और आन्दोलन के लिए समर्थक समूह स्थापित कर सकती थी। मध्यमवर्गीय स्त्रियों ने स्वदेशी आन्दोलन के लिए धन के साथ-साथ अपने जेवर भी उपलब्ध कराए।[20] सन् 1909 में लाहौर में स्त्रियों ने अपना अलग 'महिला खण्ड' स्थापित किया।[21]

सुशीला देवी नामक महिला ने स्यालकोट में स्त्रियों को स्वदेशी आन्दोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। सुशीला देवी ने स्वदेशी आन्दोलन से जुड़ी स्त्रियों की एक सभा आयोजित की जिसमें विचाराधीन ''कैदी कार्यकर्त्ताओं'' के कानूनी खर्चे के लिए धन संग्रह किया गया।[22] इसी बीच, बंगाल में देवी केन्द्रित राष्ट्रवादी गतिविधियों को नया आधार मिला। इस प्रकार शक्ति (दुर्गा एवं काली) के राष्ट्रवाद से जुड़ने से स्त्रियों की प्रभावशाली मातृछवि के लिए एक नई जगह बनी इसके माध्यम से राष्ट्रवादी संघर्षों में स्त्रियों को खुद भी एक भूमिका निभाने का अवसर मिला।

सन् 1907 में एक संभ्रात राष्ट्रवादी की पुत्री कुमुदिनी मित्रा ने 'सुप्रभात' नामक पत्र शुरू किया जिसमें माँ काली, भारतमाता तथा क्रान्ति के संबंधों को दोहराया गया। कुमुदिनी

---

19 Pattabhi Sitaramiya, *History of the Indian national Congress*, Part 1, S. Chand & Sons Publication, Delhi, 1969, p.114.

20 Usha Chakarvarty, *Condition of Bangali women Around the Second Half of 19th Century*, Culcutta, 1963, p.621.

21 Manmohan Kaur, *Role of women in the freedom movement 1857-1947,* Starling Publishers, Delhi, 1968, p.971.

22 राधा कुमार, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 98

मित्रा ने स्वयं भी 'शिक्षित ब्राह्मण स्त्रियों' का एक गुट तैयार किया जो भूमिगत क्रान्तिकारियों के मध्य सूचनाओं का आदान-प्रदान करता था।[23] लीलावती मित्रा जिन्होंने विधवा पुर्नविवाह में विद्यासागर की सहायता की थी ने भी क्रान्तिकारी छात्रों की सहायता की। पति को अंग्रजों द्वारा स्वदेशी आन्दोलन में सक्रियता के कारण देश-निकाला दिए जाने के विरोध में लीलावती मित्रा ने सरकार द्वारा दी जाने वाली मासिक आर्थिक सहायता ठुकरा दी। सन् 1909 में अरंविद घोष के जेल से रिहा होने के बाद लीलावती ने उन्हें अपने घर में शरण दी। प्रभावती मिर्जा सन् 1930 के दौरान की एक प्रभावशाली मजदूर नेता थी। इस दौर की अनेक स्त्रियों की गतिविधियों से पता चलता है कि ये रूढ़िवादी समाज में सुधार तथा राष्ट्रवाद के कामों में लिप्त थी। कामिनी राय इलबर्ट बिल आन्दोलन में लिप्त थी। सन् 1909 में अपने पति की मृत्यु के पश्चात् कामिनी राय बंग महिला समिति में शामिल हो गई तथा स्त्रियों के सामाजिक सुधार की अनेक परियोजनाओं पर कार्य करने लगी। अघोरी कामिनी राय एक कन्या पाठशाला भी चलाती थी। उन्होंने बाद में एक महिला समाज कल्याण संगठन बनाया जिसे आगे चलकर 'अघोरी कामिनी नारी समिति' के रूप में जाना गया। समिति ने असम के चाय बागान मालिकों द्वारा महिला श्रमिकों के शोषण के विरुद्ध अभियान चलाया।

राष्ट्रवादी आन्दोलन में स्त्रियों के प्रवेश के साथ ही स्त्री शिक्षा आन्दोलन को भी नई दिशा मिली। स्त्री शिक्षा की प्रबल समर्थक मैडम कामा का विचार था कि महिलाओं के समर्थन के बगैर भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन सफल नहीं होगा। उन्होंने नारी शिक्षा के नए प्रतिमान निर्धारित किए। परन्तु प्रारंभ से ही स्त्री शिक्षा आन्दोलन ने स्त्रियों को पत्नियों एवं माताओं के रूप में उनकी भूमिका को ध्यान में रखते हुए शिक्षा देना शुरू किया तथा उस समय शिक्षा को स्त्रियों का जन्मसिद्ध अधिकार नहीं बल्कि पुत्रों को उनकी माताओं से विरासत में मिलने वाला गुण माना गया।

---

[23] Manmohan Kaur, *Op. cit.*, p.112.

गैरलडाइन फोर्ब्स कहती हैं कि इस दौरान एक नई प्रकार की नारीवादी राजनीतिक भूमिका देखने को मिली। जहाँ पर वैचारिक और भौतिक माध्यमों के द्वारा महिलाओं की सार्वजनिक और निजी भूमिकाओं में विभाजन कर दिया गया था। महिलाओं की राजनीतिक गतिविधियाँ ब्रिटिश अधिकारियों से छिपी हुई थी, महिलाएँ हथियारों को छुपाने तथा पुरूषों को प्रोत्साहित करने जैसे कार्यो में सलंग्न थी, उनकी घरेलू भूमिका ने इन कार्यो के लिए समर्थन प्रदान किया। यह सहभागिता भारतीय राष्ट्रीय काग्रेंस में महिला सहभागिता से भिन्न थी। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेंस में महिला प्रतिनिधियों को पुरूषों के बराबर स्थान दिया गया परन्तु वास्तव में उनका महत्व केवल प्रतीकात्मक था। स्वदेशी आन्दोलन के अन्तर्गत भारतमाता की प्रशंसा में गीत गाए गए और भारतीय स्त्रीत्व के पुर्नउत्थान की कामना की गई जबकि दूसरी तरफ निजी और सार्वजनिक वर्गीकरण साथ- साथ चलते रहे अर्थात महिलाओं के लिए उन कार्यो की मनाही रही जो पुरूष करते थे।[24]

उन्नीसवीं शताब्दी के आखिर में समाज सुधार आंदोलन में तेजी आने के साथ इसका राष्ट्रवाद से अलगाव शुरू हुआ तथा अगले कुछ वर्षों में यह और अधिक बढ़ा। समाज सुधार के क्षेत्र में स्त्रियों से संबंधित विषय छाए हुए थे जबकि राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी बात नहीं थी। अगर पहले का दौर सुधारवादी स्त्रियों में राष्ट्रवाद के प्रसार को दर्शाता है, तो दूसरी तरफ हम देखते हैं कि सन् 1910 के बाद से उग्रराष्ट्रवादी स्त्रियाँ महिला अधिकारों के मुद्दे पर होने वाले आन्दोलनों में ज्यादा सक्रिय नजर आई। सन् 1913 में क्रान्तिकारी आतंकवाद की समर्थक कुमुदिनी मित्रा को बुडापोस्ट में सम्पन्न हुई इंटरनेशनल वीमेन सफरेज कांग्रेस में भारतीय स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए भारतीय प्रतिनिधि के रूप में आमन्त्रित किया गया। इस पर टिप्पणी करते हुए एक मध्यमार्गी महिला पत्रिका 'इण्डियन लेडीज मैगजीन' ने लिखा : ''सुश्री मित्रा को कांग्रेस में

---

[24] Geraldine Forbes, *The New Cambridge History of Indian Women in Modern India*, Cambridge University Press, Cambridge, 1996, pp.123-124.

भारतीय स्त्रियों के द्वारा किए जा रहे कार्यों का ब्यौरा देने वाला पर्चा पढ़ने के लिए आमन्त्रित किया गया है। ऐसा लगता है कि भारत का उद्धार अब निश्चित है।''[25] 1920 के बाद भारतीय महिलाओं ने महिला समानता को प्राप्त करने के लिए अपना ध्यान दो मुख्य माध्यमों – *विभिन्न संगठन स्थापित करना* तथा *राजनीतिक क्षेत्र में महिलाओं की और अधिक सक्रियता* – पर केन्द्रित किया।

महिला संगठनों का गठन

1920 में ये दूसरी पीढ़ी की महिलाएँ और अधिक सक्रिय हो गई थी। उन्होंने महिलाओं की आवश्यकताओं, समाज की आलोचना और विदेशी शासन की समाप्ति के लिए एकत्रित होना प्रारम्भ कर दिया था। उग्रवादी राष्ट्रवादी महिला सरला देवी का स्थान इसमें अविस्मरणीय है। इन्होंने सर्वप्रथम महिलाओं के लिए अलग संगठन स्थापित करने की आवश्यकता को महसूस किया। उन्होंने यह तर्क दिया कि महिला मुद्दों का ठीक प्रकार से प्रतिनिधित्व किसी भी ऐसे संगठन द्वारा नहीं किया जा सकता जो पुरुषों द्वारा स्थापित हो और इसी आधार पर उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा स्थापित संगठन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस को महिलाओं का ठीक प्रतिनिधित्व नहीं करने वाला संगठन बताया। सरला देवी कुछ समय तक तो अपनी माँ की साखी समिति के माध्यम से समाज सुधार के कार्य में लगी रही, परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपना ध्यान राष्ट्रवादी गतिविधियों पर केन्द्रित किया। सन् 1910 में सरला देवी ने इलाहाबाद में स्त्री महामंडल की स्थापना की। स्त्री महामंडल की स्थापना महिलाओं के समान हितों तथा भारत में महिलाओं की प्रगति के उद्देश्य से की गई थी। इसमें बिना किसी भेदभाव के सभी जातियों एवं वर्गों की महिलाओं को शामिल किया गया परन्तु संगठन बड़े पैमाने पर लाहौर, इलाहाबाद तथा कलकत्ता की मात्र तीन शाखाओं में सिमट कर रह गया।

---

[25] राधा कुमार, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 120

सन् 1917 में ठीक उसी समय जब सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में एक प्रतिनिधिमंडल महिलाओं की दशा में सुधार की मांग करने की श्रृंखला के तहत मांटेग्यू तथा चेम्सफोर्ड की समिति से मिला, उसी समय सरला देवी ने भारत स्त्री महामंडल की ओर से समिति के समक्ष अपना प्रतिनिधित्व प्रस्तुत किया। सरोजिनी नायडू के नेतृत्व में प्रतिनिधिमंडल ने मांग की कि ''महिलाओं को बेहतर शैक्षणिक सुविधाएँ, उन्नत स्वास्थ्य तथा प्रसूति सेवाएँ और उनके भाइयों के समान ही वोट देने के अधिकार दिए जाए।''[26] सरला देवी ने उसमें जोड़ते हुए कहा कि महामंडल की राय में ''सरकार को विधवाओं के लिए विशेष शिक्षा संस्थान खोलने चाहिए, हिन्दू पत्नियों तथा पुत्रियों के विरासत के अधिकारों की रक्षा करने वाले कानून बनाने चाहिए तथा सरकार को यह देखना चाहिए कि विद्यालय निरीक्षण समितियों में विदेशी महिलाओं के बजाय भारतीय महिलाओं को स्थान दिया जाए।'' इसके साथ ही उन्होंने महिलाओं के लिए काम के अधिक अवसर उपलब्ध कराने की भी मांग की।

सरला देवी ने पुरुषों द्वारा समर्थित संगठनों की ओर इशारा करते हुए कहा कि ''ये संगठन महिलाओं की उसी पुरानी स्त्रीपरक भूमिका और मूल्यों पर जोर देते हैं और जब यहाँ महिलाएँ 'स्त्री प्रश्नों' पर अपने स्वयं के द्वारा सोचने का कार्य प्रारम्भ करती है तो उन पर सीमाएँ लगा दी जाती है''[27] इस प्रकार सरलादेवी के पदचिन्हों पर चलते हुए 20वीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में महिला आधारित संगठन स्थापित किए गए। सन् 1910–1920 का दशक ऐसा था जिसमें सर्वप्रथम अखिल भारतीय महिला संगठनों के गठन के प्रयास किए गए। उन्नीसवीं सदी के आखिर तथा बीसवीं सदी के शुरुआती सालों में बंगाल में बंग महिला समाज एवं अघोरी कामिनी नारी समिति, महाराष्ट्र में सतारा अवलोन्नति सभा, बेंगलूर में महिला सेवा समाज, बनारस में भारत महिला परिषद तथा इलाहाबाद में प्रयाग महिला समिति

---

26 M.E. Coongis, *An Indian Womenhood Today*, Kitabistan Publication, Delhi, 1947, p.29.

27 राधा कुमार, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 120

जैसे स्थानीय एवं क्षेत्रीय संगठनों ने अखिल भारतीय संगठनों का समर्थन किया। इनमें से कुछ क्रियाशील समाज सुधार संगठन थे जबकि अन्य दूसरे संगठन स्त्रियों की चर्चा के मंच मात्र थे।

इससे पहले बड़े पैमाने पर महिलाओं को एक साथ लाने का पहला प्रयास सन् 1908 में किया गया। मद्रास में ''महिला परिषद'' या ''लेडीज कांग्रेस'' सम्पन्न हुई जिसमें समूचे दक्षिण भारत से आई महिलाएँ शामिल हुई। इसके बाद सन् 1917 में ऐनी बेसेंट, डोरोथी जिन राजदास, मालती पटवर्धन, अन्नू स्वामीनाथन, श्रीमती दादाभाई एवं श्रीमती अम्बुजफल ने मिलकर वूमेन इंडियन एसोसिएशन (डब्ल्यू.आई.ए.) की स्थापना की। इस एसोसिएशन के बारे में टिप्पणी करते हुए राजकुमारी अमृत कौर ने सन् 1932 में इसे ''भारत में उदित होने वाले पहले शुद्ध नारीवादी संगठन की संज्ञा दी।''[28] हालांकि डब्ल्यू.आई.ए. ने अपने आप को सभी रंगों, संस्कृति और क्षेत्र की महिलाओं के प्रतिनिधि के रूप में परिभाषित किया था परन्तु यह संगठन कुछ जाति और वर्ग की महिलाओं से ही सम्बन्धित रहा तथा मद्रास से बाहर अपने आप को नहीं फैला पाया। सन् 1917 में जब एक प्रतिनिधिमण्डल राज्य सचिव सर एडवर्ड मोन्टग्यू से महिला मताधिकार पर चर्चा के लिए मिला था, तब भी डब्ल्यू.आई.ए.ने अपने आप को जाति और वर्ग की संरचना तक ही सीमित रखा। इसने दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में अपनी शाखाएं स्थापित की, परन्तु फिर भी मुख्य रूप से मद्रास थियोसोफिकल सोसाइटी से ही जुड़ा रहा।

इसके बाद सन् 1925 में स्थापित नेशनल काउन्सिल ऑफ इन्डियन वूम्न (एन.सी.आई. डब्ल्यू.) भी उच्च वर्ग से सम्बन्धित विशिष्ट वर्गीय संस्था ही बनी रही तथा राष्ट्रीय रूप ग्रहण नही कर पाई। इसे अर्न्तराष्ट्रीय महिला परिषद् की शाखा के रूप में स्थापित किया गया था जिस पर लेडी टाटा तथा बम्बई के धनी औद्योगिक घरानों की महिलाओं का प्रभुत्व था। इनमें से

[28] Manmohan Kaur, *Op. cit*, p.106.

ज्यादातर महिलाएं परिषद् के मुख्य उद्देश्य के रूप में सामाजिक परोपकार को देखती थी। परिषद् ने उस ''प्रबोधन क्रियात्मकता'' के लिए स्थान प्रदान किया जो ब्रिटिश मध्यम वर्ग की महिलाओं की सोच पर आधारित था। फिर भी परिषद् ने श्रम, विधि निर्माण और प्रेस से सम्बन्धित अनेक समितियों का गठन किया जिसमें विधि निर्माण से सम्बन्धित समिति सबसे ज्यादा सक्रिय थी। ये दोनों संस्थाएं- डब्ल्यू.आई.ए. और एन.सी.आई.डब्ल्यू. - सभी भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती थी लेकिन ये महिलाओं के उस जनसमूह से बहुत दूर थी जिनको वे लाभ पहुचाँना चाहती थी। इनका मुख्य उद्देश्य सरकार को विभिन्न समस्याओं पर सलाह और सुझाव देना मात्र था जिसके लिए उनकी कार्यप्रणाली प्रार्थना पत्र देने पर केन्द्रित थी।[29]

इन दोनों की तुलना में 1927 में स्थापित तीसरा महिला संगठन ऑल इन्डिया वूमेन कान्फ्रेंस (ए.आई.डब्ल्यू.सी.) महिला मुद्दों को प्रतिनिधित्व देने में अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाने में सफल रहा। दस वर्षों के अन्दर ही सम्मेलन को श्रम, ग्रामीण पुनः निर्माण, उद्योग, पुस्तकों, अफीम और बाल विवाह कानून से सम्बन्धित उपसमितियों में शामिल किया जाने लगा। यह 1927 के शारदा एक्ट या हिन्दू बाल विवाह निषेध कानून के प्रचार के द्वारा अपनी पहचान बनाने में सफल रहा। 1930 के प्रारम्भ तक महिला संगठन एक प्रभुत्वशाली ताकत के रूप में उभरे जो हर राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय मुद्दे पर जवाब दे रहे थे। वे भारत के भविष्य को तय करने वाली हर समिति, योजना और कार्यक्रमों में हिस्सा ले रहे थे। [30]

राष्ट्रीय आन्दोलन में महिला भागीदारी का दूसरा दौर

1920 से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने किसानों, श्रमिकों और महिला संगठनों का व्यापक समर्थन प्राप्त करने के लिए उनसे सम्पर्क स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया था। कलकत्ता

---

[29] Samita Sen, "Toward a feminist polities? The Indian womens movement in historical perspective", *policy research report on gender and development, working paper series no. 9*, the world bank development research group, April 2000, p.15-16.

[30] *Ibid*., p.17.

कांग्रेस ने महिला जागरूकता के अनेक संकेत दिए। उदाहरण के तौर पर यह पहली बार हुआ कि कांग्रेस जैसे मंच से राष्ट्रवादी आन्दोलन में महिलाओं की भूमिका को सराहा गया तथा उसे व्यापक एवं पुरुषों की भूमिका से भिन्न बताया। हालांकि बेंसेट तथा नायडू दोनों ने ही यह स्पष्ट कर दिया कि महिलाओं की यह भूमिका पूरक है, प्रमुख नहीं। उन दोनों नेताओं में से एक ने भी महिलाओं के लिए न तो कोई कार्यक्रम तय किया और न ही जगह बनाई। शायद उन्हें महिलाओं की सक्रियता सुनिश्चित करने के लिए एक साधन के रूप में इस्तेमाल किया गया।

सन् 1920 के दशक में महिलाओं की दूसरी पीढ़ी आगे आई और सही मायने में राष्ट्रवादी आन्दोलन में महिलाओं की व्यापक सहभागिता सन् 1919 में रौलट कानून बनने के बाद शुरू हुई। इस कानून के विरोध में संघर्ष छेड़ कर गांधी एक अखिल भारतीय नेता के रूप में उभरे तथा सन् 1920–21 में शुरू हुआ असहयोग आन्दोलन जैसे–जैसे आगे बढ़ा महिलाओं की भागीदारी भी बढ़ती गई। बम्बई तथा कलकत्ता में सन् 1920–21 के दौरान महिलाओं ने शराब की दुकानें लूट ली तथा सरकार द्वारा शराब के ठेकों के लाइसेंस की नीलामी के अवसर पर बम्बई में टाऊन हॉल का घेराव कर लिया और नीलामी रोक दी। बम्बई की प्रमुख महिला आन्दोलनकारियों में सरोजिनी नायडू, उमा कुण्डापुर, नंदूबेन कानुगा, पेरिस कैप्टन तथा मणिबेन शामिल थी। 13 अप्रैल को जलियाँवाला बाग की बरसी पर महिलाओं ने बम्बई में राष्ट्रीय स्त्री सभा की स्थापना की। कलकत्ता में बसंती देवी (श्रीमती सी.आर. दास), उर्मिला देवी तथा सुनीति देवी तीन प्रमुख महिला संगठन कर्ता थी। सन् 1922 में बसंती देवी ने चटगांव में सम्पन्न हुए बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन की अध्यक्षता की तथा सन् 1923 में काकीनाडा में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व उसकी तैयारी के लिए दुर्गाबाई के नेतृत्व में एक विशेष 'बालिका कार्यकर्ता कोर' की स्थापना की।[31]

---

[31] राधा कुमार, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 141

लज्जावंती ने सन् 1920–21 के असहयोग आन्दोलन में महिला सहभागिता पर विचार व्यक्त करते हुए कहा ''असहयोग आन्दोलन में उनकी सक्रियता 1930 के आन्दोलन जैसी नहीं थी परन्तु जिस लगन और आशा से वे 1920 के आन्दोलन में शामिल हुई वह सचमुच महान थी।''[32] उस समय महिलाओं में इस महान उपलब्धि का बोध था कि उनके लिए नई जगह बन रही है। वीर भारत तलवार तथा इन्द्राणी चटर्जी ने इस बात का उल्लेख किया है कि सन् 1910 तथा 1920 के दशक में महिलाओं के बीच समानता की बहस जिस प्रकार से उभरी उसने महिला अधिकारों को न केवल राष्ट्रवाद से जोड़ा बल्कि महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार दिए जाने की मांग का राष्ट्रवादी दलीलों के जरिए बचाव भी किया। सन् 1920 के दशक तक महिला अधिकारों के लिए दो बिल्कुल भिन्न सिद्धांत प्रतिपादित किए जाते रहे।[33]

पहला यह कि चूंकि महिलाएँ सामाजिक तौर पर माँ की भूमिका में अधिक उपयोगी है इसलिए उनके अधिकारों की मान्यता दी जानी चाहिए।

दूसरा यह कि चूंकि महिलाओं की जरूरतें, इच्छाएँ तथा क्षमताएँ पुरुषों के समान है इसलिए वे समान अधिकारों की हकदार है।

1920 के दशक में श्रमिक वर्ग की महिलाओं में चेतना आई इससे पहले उनके लिए काम करने के कोई विशेष प्रयत्न नही किये गये थे। 1920 के दशक के अन्त तक श्रमिक आन्दोलनों में महिलाओं की उपस्थिति महसूस की जाने लगी थी, न केवल कई नामी ट्रेड यूनियनी महिलाएँ सामने आई वरन श्रमिक महिलाओं ने स्वंय प्रयत्न करके संगठित होना शुरू कर दिया था। इसके साथ ही 1920 के बाद राष्ट्रीय आन्दोलन और महिला भागीदारी पर गांधी जी का प्रभाव दिखाई देने लगा था। अब तक गाँधी जी एक युग पुरुष बन चुके थे और जिन क्षेत्रों का दौरा उन्होंने कभी नहीं किया था वहाँ भी लोग उनके नाम से परिचित हो चुके थे। गाँधी जी पर एक विचारपूर्ण लेख में मधु किश्वर ने इसका उल्लेख किया है कि

---

32 *वही*, पृष्ठ 141

33 *वही*, पृष्ठ 144

उन्होंने सार्वजनिक जीवन में महिलाओं को ऊँचा स्थान दिया उनमें नया आत्मविश्वास जगाया और नया आत्मविचार यह कहते हुए पैदा किया कि ''स्त्रियाँ उदासीनता त्यागकर सुधार के सकारात्मक उद्देश्य की ध्वजवाहिका बन गई है।''[34] इसमें कोई संदेह नहीं है कि गाँधी जी का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह था कि उन्होंने सार्वजनिक गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता के औचित्य को सिद्ध करते हुए उसे विस्तार दिया ताकि वे वर्ग एवं सांस्कृतिक बंधनों को तोड़कर आगे बढ़ सके। परन्तु इसी समय महिलाओं के स्वभाव और भूमिका के बारे में गाँधी जी की परिभाषा हिंदू पितृसत्ता से गहरे रूप से जुड़ी हुई नजर आई और अक्सर उनका झुकाव महिला आन्दोलनों को आगे बढ़ाने के बजाए उन्हें सीमित करने की ओर रहता। प्रारंभिक वर्षों में गाँधी जी के अनुसार स्त्री-पुरुष के मध्य जैविक भिन्नता जहाँ उनके पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व का निर्धारण करती है, वही इसका आशय यह भी है कि दोनों अलग-अलग भूमिकाओं के लिए पैदा हुए है। पुरुष की भूमिका जहाँ जीविकोपार्जन की थी वहीं स्त्री की भूमिका गृहिणी एवं माँ के रूप में थी। गाँधी जी के अनुसार बराबरी का यह अर्थ कदापि नही था कि महिलाएँ वे सब काम करें जो पुरूष करते है। गाँधी की आदर्श दुनिया में स्त्रियों और पुरूषों के अपने स्वभाव व क्षमता अुनसार करने के अलग-अलग क्षेत्र निश्चित थे। उन्होंने महिलाओं को कहा कि वे 'स्वदेशी व्रत' लें, सारी विदेशी वस्तुओं का परित्याग करें और प्रतिदिन थोड़े समय सूत कातने और खादी पहनने की प्रतिज्ञा करें।[35] उन्होंने कई बार अपने दक्षिणी अफ्रीकी सत्याग्रही महिलाओं से प्रभावित होने की बात कही फिर भी महिलाओं को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल करने में उन्हें कई वर्ष लगे।

1920 के दशक के अंतिम दिनों में गाँधी ने अपने स्वर में परिवर्तन करते हुए महिलाओं को घर से निकलकर नागरिक अवज्ञा आन्दोलन में शामिल होने की अपील की

---

34 *वही*, पृष्ठ 172

35 लता सिंह, ''राष्ट्रीय आन्दोलन में महिला भूमिका के सवाल'', मुख्य पुस्तक, *नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे*, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 155

किंतु उन्होंने उनकी सहभागिता को विदेशी और शराब की दुकानों की घेराबंदी करने तक सीमित कर दिया क्योंकि गाँधी जी की नजर में स्त्रियों को यह कार्य स्वाभाविक रूप से फबता था, इसलिए नहीं की शराब की दुकानों की वजह से महिलाएँ अपने पतियों की नशाखोरी से त्रस्त थी बल्कि इसलिए भी कि यह निजी जीवन में नैतिकता एवं शुचिता का मुद्दा था।[36] सन् 1930 के दशक तक गाँधी के दृष्टिकोण में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। उन्होने नागरिक अवज्ञा आन्दोलन में स्त्रियों की भूमिका की सराहना की। गाँधी जी ने कहा: ''भारतीय स्त्रियों ने परदा फाड़कर फेंक दिया और राष्ट्र के काम के लिए बाहर आ गई। उन्होंने महसूस किया कि देश उनकी घरेलू देखभाल की जिम्मेदारी के अलावा कुछ और अधिक करने की मांग कर रहा था।''[37]

सविनय अवज्ञा आंदोलन से राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का एक नया चरण शुरू हुआ। 1930 के इस आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी संख्यात्मक और गुणात्मक दोनों ही दृष्टियों से 1920 के दशक की शुरूआत की भागीदारी से भिन्न थी। मार्च 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन अहमदाबाद से डांडी तक 240 मील की डांडी-यात्रा से शुरू हुआ। यह आंदोलन अंग्रेजों के नमक कानून को तोड़ने, उनके नमक बनाने के एकाधिकार को चुनौती देने के लिए चलाया गया। महिलाएं इस यात्रा में हिस्सा लेना चाहती थीं लेकिन गांधीजी ने उन्हें यह कहकर मना किया कि इससे अंग्रेज सोचेंगे कि भारतीय कायर हैं और खुद के बजाय महिलाओं को आगे कर रहे हैं[38] फिर भी जहां-जहां यात्रा का पड़ाव होता भारी संख्या में महिलाएं गांधीजी को सुनने के लिए जमा होतीं। डांडी पहुंचकर गांधीजी ने महिलाओं का एक सम्मेलन बुलाया और वहां उन्होंने महिलाओं के लिए आंदोलन में भावी कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई। महिलाओं को अपने लिए इस तरह के कार्यक्रम

---

36 राधा कुमार, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 172

37 *वही*, पृष्ठ 173

38 *वही*, पृष्ठ 173

आयोजित करने थे जो उनके स्वभाव के अनुकूल हों। उन्हें खासकर विदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों का बहिष्कार करना था।

डांडी यात्रा के बाद महिलाओं को स्वाधीनता आंदोलन में पूरी तरह सम्मिलित कर लिया गया, जैसे-जैसे आंदोलन भारत के अन्य भागों में फैला स्थानीय नेताओं ने महिलाओं की भागीदारी पर कोई रोक नहीं लगाई। हजारों महिलाओं ने नमक सत्याग्रह आंदोलन में नमक बनाने से लेकर बेचने तक के काम किए। 1930 के दशक में महिलाओं को पहली बार पुलिस दमन का सामना करना पड़ा। महिलाओं के जुलूसों पर भी लाठीचार्ज किया गया तथा कई बार पुलिस ने उन्हें काफी बेहरमी से मारा। इस तरह की घटनाओं से जनता में काफी आक्रोश फैला और आंदोलन ने और जोर पकड़ा। प्रेस भी अंग्रेजी राज्य में महिलाओं के प्रति पुलिस के बर्बर व्यवहार पर खूब खबरें छापती। सामाजिक सुधारवादी और राष्ट्रवादी, दोनों ही धाराओं की पत्रिकाओं में पुलिस की काफी निंदा हुई। कांग्रेस ने अपने बुलेटिन में स्वैच्छिक महिला कार्यकर्ताओं के प्रति दुर्व्यवहार पर विशेष लेख श्रृंखला निकाली। अखिल भारतीय महिला कांग्रेस ने 1931 के लाहौर सत्र के लिए इस पर एक विशेष रिपोर्ट तैयार की। जेल भेजी जाने वाली महिलाओं की संख्या तेजी से बढ़ी। 1930 में मुंबई में मतदान केन्द्र पर चुनाव के खिलाफ धरने पर बैठी 400 महिलाओं को एक साथ गिरफ्तार किया गया, गिरफ्तार हुई महिलाओं को काफी कड़ी सजा दी गई। जब बड़े पैमाने पर बहिष्कार की प्रतिक्रिया में सरकार के गिरफ्तारी आदेश आए तो कांग्रेस ने कार्यकर्ताओं को स्वयं गिरफ्तारी देने के लिए आमंत्रित किया। शहरी और ग्रामीण दोनों ही महिलाओं ने 1932-33 में भारी संख्या में गिरफ्तारी दी।

जहां एक ओर महिलाएं सविनय अवज्ञा और असहयोग आंदोलनों में भाग ले रही थीं, वही दूसरी तरफ काफी संख्या में महिलाएं क्रांतिकारी और कम्युनिस्ट आन्दोलन से भी जुड़

रही थीं, इनमें अधिकतर छात्राएं थीं। आंदोलन की शुरूआत में उनका काम थोड़ा सीमित था जैसे क्रांतिकारियों को घर में पनाह देना, प्रचार करना, पैसा इक्ट्ठा करना, हथियारों को छिपाकर रखना और एक जगह से दूसरी जगह ले जाना तथा विस्फोटक बम बनाना। धीरे-धीरे वे प्रत्यक्ष गतिविधियों में शामिल की गई और कोर ग्रुप का हिस्सा बनीं। यहां ध्यान देने वाली बात यह है कि इस सबके बावजूद उनको उनकी लैंगिक भूमिका से आजादी नहीं मिली हुई थी। उनका काफी समाजीकरण किया जाता कि कैसे उन्हें अपना व्यवहार शालीन और नियंत्रित बनाए रखना है। इसके अलावा उनकी यौनिकता को लेकर काफी भय था। 1920 और 1930 के दशक में क्रांतिकारी आंदोलन के भीतर महिलाएं और पुरुष एक-दूसरे से दूर रहे, इस नियम का पालन काफी कठोरता से करने की अपेक्षा की जाती थी। तनिका सरकार के शोधों में यह स्पष्ट दिखता है कि जैसे-जैसे युवा लड़कियों की बंगाल आंदोलन में भागीदारी बढ़ी, महिलाओं के एक्टीविज़्म का काफी विरोध हुआ।[39]

नमक सत्याग्रह को आमतौर पर भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष में पहली बार भारतीय स्त्रियों की व्यापक सहभागिता के रूप में याद किया जाता है। सन् 1930 के दशक में राष्ट्रवादी गतिविधियों में महिलाओं की सक्रियता का एक महत्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि महिला संगठनों पर उच्चवर्गीय स्त्रियों का प्रभाव समाप्त हुआ। मिसाल के तौर पर कमला देवी बताती है कि ए.आई.डब्ल्यू.सी. में पहले प्रान्तीय राज्यों की महारानियों को अध्यक्ष बनाया जाता था। 1930 के दशक में महिलाओं ने महसूस किया कि ऐसी अध्यक्ष मात्र 'मुखौटा' होती है जबकि ए.आई.डब्ल्यू.सी. सक्रिय स्त्रियों का संगठन है इसलिए किसी सक्रिय महिला को इसका अध्यक्ष बनाए जाने की जरूरत है। इसीलिए सन् 1931 में सरोजिनी नायडू को सम्मेलन का अध्यक्ष चुना गया।''[40]

---

39 लता सिंह, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 156

40 Gail Pearson, "Reserved Seats – Women and the Vote in Bombey", *I.E.S.H.R*, year 1920, Vol. 1, p.61.

इस प्रकार इस दौरान जहाँ एक तरफ इस विचार को मान्यता मिली कि महात्मा गाँधी द्वारा महिला आन्दोलन का विस्तार करते हुए इसे सम्पूर्ण राष्ट्रवादी आन्दोलनों तक बढ़ाया गया, उन्होनें राजनीति का महिलाकरण किया और महिलाओं के लिए विशेष स्थान बनाया। वहीं दूसरी तरफ यह भी सच्चाई थी कि महिला सहभागिता ने राष्ट्रवादी काग्रेंस और गाँधीवादी राजनीति को वैधता प्रदान की। इसी दौरान ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों को सभ्य बनाने के लिए चलाए जा रहे ''सभ्यता आन्दोलन'' और महिलाओं के हितैषी होने के दावों का भी खण्डन हुआ। महिलाओं के खिलाफ हिंसा और शारीरिक दुर्ववहार ने उपनिवेशी शासन की वैधता पर प्रश्नचिन्ह लगाए। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेंस के नेतृत्व में महिला संगठनों ने नागरिक अधिकारों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दर्शाई, मध्यमवर्गीय महिलाओं ने सार्वजनिक प्रतिबन्धों की बेडियों को तोड़ते हुए अपनी पुत्रियों में औपचारिक शिक्षा, व्यवसाय और राजनीति को बढावा दिया और कहीं न कहीं राष्ट्रवादी आन्दोलन के नैतिक पैमानों के अन्तर्गत लैंगिक भूमिका को भी पुनः परिभाषित किया गया परन्तु फिर भी राष्ट्रीय आन्दोलन पर उच्च और मध्यम वर्गीय हिन्दुओं का प्रभाव देखने को मिला। गाँधी जी ने जिस प्रकार हिन्दू महिलाओं को आकर्षित करने के लिए पवित्र हिन्दू धार्मिक ग्रंथो और आर्दशों जैसे सीता, सावित्री आदि का प्रयोग किया उसने मुस्लिम महिलाओं को आन्दोलन से दूर कर दिया क्योंकि वो उनके साथ सहजता महसूस नही करती थी। इसके साथ ही इस प्रकार के पात्रों का इस्तेमाल करके गाँधी जी ने महिलाओं की उसी पुरानी स्त्रियोचित भूमिका को बढ़ावा दिया जिसने न सिर्फ महिलाओं बल्कि पुरूषों को भी आश्वस्त किया।[41]

यद्यपि क्रांतिकारी आंदोलन में सम्मिलित कुछ महिलाओं ने महिलाओं की परम्परागत लैंगिक भूमिका को तोड़ने का प्रयास किया परन्तु ये संख्या में बहुत कम थी। इन महिलाओं की राजनीतिक उपलब्धियाँ सराहनीय थी परन्तु समाज उन्हें इज्जत और प्रतिनिधित्व के लायक

[41] Samita Sen, *Op. cit.*, pp.15-16.

नहीं मानता था। प्रीतीलता वाडेकर जो कि स्वतन्त्रता आन्दोलन की प्रसिद्ध शहीद थी ने जब यह प्रश्न उठाया कि ''मुझे आश्चर्य होता है कि क्यों देश की आजादी की लड़ाई जैसे कार्य के लिए महिलाओं और पुरूषों के कार्यो में अन्तर होना चाहिए? यदि हमारे भाई मातृभूमि की लड़ाई में हिस्सा ले सकते है तो बहनें क्यों नही? यदि सत्याग्रह आन्दोलन में बहनें अपने भाईयों के आस-पास खड़ी हो सकती है तो वे क्रांतिकारी आन्दोलन में भाग लेने की अधिकारी क्यों नही?'' तो पुरूष प्रधानता वाली राष्ट्रवादी विचारधारा के पास इसका कोई उत्तर नहीं था।[42]

क्रांतिकारी महिलाओं वाला उग्रवाद 1940 के दौरान वामपंथी महिलाओं में भी देखने को मिला। इनमें से कई महिलाओं ने महिलाओं की गतिविधियों पर लगाए गए प्रतिबन्धों, अलगाव वाले मूल्यों तथा भेदभावपूर्ण यौनिक नैतिकता को थोपे जाने पर सवाल खड़े किए परन्तु क्रांतिकारी महिलाओं की तरह ये भी एक छोटा समूह था जो कि मुख्यधारा से बाहर था।

महिला आन्दोलन का विभाजन तथा कुछ अन्य मुद्दे

इसी दौरान राष्ट्रवाद और कुछ महिला मुद्दों को लेकर महिलाओं में मतभेद पैदा होने शुरू हो गये थे। 1 नवम्बर 1930 से जनवरी 1931 के मध्य जब पहला गोलमेज सम्मेलन आयोजित हुआ तो बेगम शाहनवाज तथा कमला सुब्बारायन उसमें शामिल हुई। ये दोनों ही महिलाओं के लिए स्थान आरक्षित किये जाने की हिमायत करने वाली लॉबी की सदस्य थी। इनका मत था कि महिलाओं को आरक्षण देने के बाद ही पुरुषों से समानता की जा सकती है। राष्ट्रवादी स्त्रियों ने उनकी इस दलील का विरोध किया तथा राष्ट्रीय स्त्री सभा एवं देश सेविका संघ ने गोलमेज सम्मेलन में बेगम शाहनवाज तथा कमला सुब्बारायन के शामिल होने के विरोध में प्रदर्शन आयोजित किया।

---

42 *Ibid.*, p.17.

बेगम शाहनवाज तथा सरोजिनी नायडू दोनों ने दूसरे गोलमेल सम्मेलन में भी भाग लिया परंतु इस बार परिदृश्य पर राष्ट्रवादी महिलाएं हावी रही। उन्होंने सम्मेलन में मेमोरेंडम प्रस्तुत करके आरक्षण, नामांकन या विनियुक्ति जैसे सभी रियायती सुझावों को ठुकरा दिया और कहा कि किसी भी प्रकार की तरजीही कोशिश का अर्थ होगा भारतीय स्त्रियों को समान राजनीतिक दर्जा दिए जाने के एकमात्र निर्णय का खुलेआम उल्लंघन।[43]

महिला आन्दोलन के परस्पर विरोध धीरे–धीरे स्पष्ट रूप से बड़े हो रहे थे। राष्ट्रवादी विचारधारा वाली महिलाएं क्रांतिकारी महिलाओं द्वारा किए जा रहे कार्यो और विचारधारा से सहमत नहीं थी। उनके अनुसार क्रांतिकारी महिलाएं अपनी परम्परागत भारतीय छवि को छोड़कर पश्चिमी महिलाओं का अनुसरण कर पश्चिमी नारीवाद को अपना रही थी, जो सिर्फ महिलाओं की स्वतन्त्रता जैसे मुद्दो पर ही केन्द्रित था, जबकि हमें अपनी परम्परागत पारिवारिक भूमिका में रहते हुए अपने राष्ट्र और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना है। सरोजिनी नायडू तथा बेगम शाहनवाज ने घोषणा की कि भारतीय महिलाओं का आन्दोलन पश्चिमी महिलाओं के आन्दोलन की तरह केवल 'स्त्रीवादी' नहीं है।[44]

इस प्रकार राष्ट्रवादी महिलाओं का क्रांतिकारी और कम्युनिस्ट विचारधारा वाली महिलाओं से अलगाव था और साथ ही यहाँ पर उच्चवर्गीय हिन्दू महिलाओं का प्रभुत्व होने के कारण महिला संगठनो द्वारा निम्न और ग्रामीण महिलाओं को बड़े पैमाने पर आकर्षित करने के प्रयास भी विफल हो चुके थे। किसानों और कामगार महिलाओं की बड़े पैमाने पर सहभागिता वामपंथी नेतृत्व में देखने को मिली। जिसमें हम उत्तरी बंगाल का तेभागा आन्दोलन, आन्ध्रप्रदेश का तेलंगाना आन्दोलन और पश्चिमी भारत में कपास मीलों के कारीगरों के आन्दोलन को शामिल कर सकते है। परन्तु फिर भी महिला आन्दोलन के अन्तर्गत कोई भी संगठन सिर्फ महिला मुद्दों

---

43 M.K Gandhi, *Women and Social Injustice*, Navjeevan Publishing House, Ahamdabad, 1954, pp.18-19.

44 Pearson Gail, *Op.cit.*, pp.53-54.

पर महिलाओं को आकर्षित नहीं कर पाया। महिला मुद्दों पर किए जा रहे आन्दोलन शहरी अभिजन महिलाओं तक ही सीमित थे, हालांकि गरीब महिलाएं वर्ग और राष्ट्रवाद जैसे मुद्दों पर सक्रिय थी। शुरूआत में कम्युनिस्ट समूहों के अन्दर महिला मुद्दों और सम्बन्धों पर उठाए गए सवाल भी शीघ्र ही व्यर्थ लगने लगे क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर ही उसके पितृसतात्मक चेहरे पर सवाल उठने लग गए थे। अब किसान और कामगार महिलाओं द्वारा पूछे गये इस चर्चित प्रश्न कि ''मेरा कामरेड मुझे घर पर क्यों पीटता है?'' का कम्युनिस्ट पार्टी के पास कोई उत्तर नहीं था।[45]

आंदोलन के अगले चरण, 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में हजारों की संख्या में महिलाओं ने भाग लिया। हजारों महिलाएं भूमिगत हुई, समानांतर सरकार बनाने में सहायक बनीं तथा कई गैर कानूनी कामों में भी भागीदार बनीं। इस दौरान कईयों की हत्या भी की गई और इसलिए बड़े पैमाने पर महिलाओं को आत्मरक्षा-संबंधी प्रशिक्षण दिया गया ताकि वे जापानी बमों और अंग्रेजों तथा अमरीकन यौनिक उत्पीड़न से अपनी रक्षा कर सकें। बारीसाल में महिलाओं की आत्मरक्षा समितियां बनीं, जहां उन्हें लाठी चलाने का प्रशिक्षण दिया गया।[46]

1940 के दशक में देश के स्वाधीन होने के आसार दिखने लगे थे और महिला आंदोलन पूरी तरह से स्वाधीनता आंदोलन में समाहित हो गया था। यह सब इतनी सहजता से हुआ कि सबको लगा कि शायद महिलाओं की मुक्ति संबंधी सभी मुद्दों का हल देश की स्वतंत्रता है। यह बात काफी गहराई से महसूस की जा रही थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति से महिलाओं और पुरुषों के बीच की गैरबराबरी भी दूर हो जाएगी, यह भी उसी सोच का विस्तार था कि देश की स्वतंत्रता से देश की औरतों की समस्याएं दूर हो जाएंगी, महिला एक्टीविस्टों को महिला मुक्ति का प्रतीक और स्वतंत्रता के ठोस आधार की तरह देखा गया

---

45 Samita Sen, *Op. cit.*, p.16.

46 लता सिंह, *पूर्वोक्त*, पृष्ठ 171-173

तथा महिला एक्टीविस्टों की जो सीमित और प्रतिबंधित छवि उस समय दिखती है उस पर कोई सवाल नहीं उठे। राष्ट्रवादी, क्रांतिकारी, उग्रवादी और कम्युनिस्ट सभी ने महिला एक्टीविज्म को एक खतरे की तरह महसूस किया और अपने-अपने ढंग से सभी ने इसे सीमित करने की कोशिशें कीं। इन सबका जोर इस बात पर था कि महिलाओं को घरेलू और अधीनस्थ के रूप में देखा जाए। उदाहरण के लिए कम्युनिस्ट केवल पुरुष एक्टीविस्टों की पत्नियों को ही पार्टी में शामिल करना चाहते थे। महिलाओं में स्वयं भी इस विषय पर विरोधी विचार थे। कुछ का मानना था कि स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं जबकि दूसरों का मानना था कि उनमें कोई खास भिन्नता नहीं है। यह पूरक और समानता की विचारधारा भारत में 1970 के दशक में दूसरी नारीवादी लहर के समय प्रत्यक्ष चर्चा का विषय बनी।

इस प्रकार जब हम राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी को देखते हैं तो वह उनकी घरेलू भूमिका का विस्तारमात्र ही दिखती हैं। इस भागीदारी में उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान चुनाव या स्वतंत्र कार्य करने की गुंजाइश नहीं थी। आंदोलन में उनकी भागीदारी से न तो घरेलू जीवन या पारिवारिक समीकरणों में कोई अंतर आया, न उनकी जीवन शैली में कोई परिवर्तन आया और न ही उनकी राजनीतिक भूमिका में कोई विशेष बदलाव आया। महिलाओं को कभी भी राजनीतिक एक्टीविस्ट की तरह नहीं देखा गया और महिलाओं की राजनीतिक भूमिका तय करने में उनकी समाज में स्वीकृत पारंपरिक भूमिका के साथ बारीकी से जोड़-तोड़ की गई। महिलाओं को राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल करने के लिए जो ढांचा और रणनीति बनाई गई उससे उनके राजनीतिकरण की सम्भावनाएं बहुत सीमित हो गई थी।

पुरूष राजनीतिज्ञों ने महिलाओं को ऐसे काम दिए जिससे स्त्री-पुरुष क्षेत्रों का वैचारिक और व्यवहारिक अलगाव बना रहे। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की भीतरी या बाहरी

राजनीतिक गतिविधियों में परंपरा से हटकर कुछ बदलाव लाने की सोची ही नहीं। महिला का कार्यक्षेत्र घर था, उनकी पोषक और त्यागमयी मां की छवि को ज्यों का त्यों बनाए रखा गया। साथ ही इस बात पर विशेष जोर दिया जाता रहा कि महिलाएं सार्वजनिक क्षेत्र में जाएं तो भी अपने नारीसुलभ गुण नहीं छोड़ें। बार-बार उनके विनम्र और विनयशील गुणों की पुष्टि की जाती रही।

स्वाधीनता आंदोलन को केवल राजनीतिक आंदोलन न मानकर एक विशेष प्रकार का त्याग और बलिदान माना गया। आंदोलन एक धार्मिक प्रक्रिया और सांस्कृतिक जंग थी। देशभक्ति को धर्म में समाहित कर देने से महिलाओं का राजनीतिकरण पारंपरिक सांस्कृतिक ढांचे में सही उतरता था। राष्ट्रीय आंदोलन का सारा विरोध पाश्चात्य मानदंडों और प्रतिमानों से था और आंदोलन की भाषा, अवधारणा, प्रतीक आदि सबमें भारतीय धर्म एवं परंपरा को बनाए रखने पर विशेष जोर था। बार-बार याद दिलाया जा रहा था कि हमें पाश्चात्य संस्कृति से भारतीय संस्कृति की रक्षा करनी है। आंदोलन की इन परंपरावादी जड़ों के कारण ही हजारों महिलाएं आंदोलन में भाग ले सकीं और इसी कारण वे अपने निजी व सार्वजनिक जीवन में परंपरा से हटकर कुछ नहीं कर सकीं।[47]

इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं को एक नई पितृसत्ता तले बाध्य रहने को मान्यता मिली। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की मुक्ति तथा उत्थान की स्वायत्त महत्ता को नही देखा इसके विपरीत महिलाओं की पत्नी, पुत्री और मां की भूमिकाओं की और अधिक पुष्टि हुई, केवल राष्ट्रीय आंदोलन की आवश्यकताओं को देखते हुए उसे थोड़ा-बहुत विस्तार मिल गया। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की भूमिकाएं और सीमाएं पहले ही तय कर दी थीं और महिलाओं को उन सीमाओं को लांघने की अनुमति नहीं थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में

---

47 *वही*, पृष्ठ 174

महिलाओं का योगदान केवल उनकी पारंपरिक भूमिका का विस्तारमात्र था और राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं का कहीं कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं दिखाई दिया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद महिला आन्दोलन

स्वतन्त्रता के बाद महिला आन्दोलन में एक ठहराव आया और वो संगठित तरीके से आगे नही बढ़ा। हांलाकि कुछ मुद्दे उस दौरान भी उठाए जाते रहे जैसे कम्युनिस्ट पार्टी की तरफ से महिला नेतृत्व के अन्तर्गत 1954 में भारतीय महिलाओं के राष्ट्रीय संघ (एन.एफ.डब्ल्यू) की स्थापना की गई। तेलगांना आन्दोलन 1950 तक जारी रहा तथा औद्योगिक कामगारों का मजदूरी के लिए संघर्ष 1950 और 1960 के दशक में अपने शिखर पर था। वे महिलाएं जो सक्रिय रूप से भागीदारी रखती थीं, ने वामपंथी नेतृत्व को महिला मुद्दों पर विशेष रूप से घरेलू हिंसा की अनदेखी के लिए चुनौती देना प्रारम्भ कर दिया था परन्तु अभी भी यह बहुत छोटी सी आहट मात्र थी। अभी भी ऐसा कोई मंच नही था जहाँ से महिला मुद्दों को उठाया जा सके और उनके लिए लड़ा जा सके।

1970 के दशक में भारत में और भारत के बाहर घटी घटनाओं ने भारतीय महिला आन्दोलन को एक क्रांतिकारी मोड़ दिया। अर्न्तराष्ट्रीय महिला वर्ष और महिला दशक ने पाश्चात्य देशों में 'नव नारीवाद' को नई पहचान दी। 1950 में भारतीय राज्य के विकास के लिए जिस मॉडल को अपनाया था उसमें यह कल्पना की गई थी कि इस मॉडल के द्वारा यहाँ पर भी वैसे ही परिणाम प्राप्त होगे जैसे विकसित देशों में हुए थे। यह सभी के हितों को बढ़ावा देने वाला होगा। परन्तु यह कार्य भारतीय पितृसत्तात्मक व्यवस्था में बहुत कठिन था और यह बात उस वक्त सही साबित हुई जब संयुक्त राष्ट्र संघ के दबाब में आकर भारतीय सरकार ने महिलाओं की स्थिति की जांच के लिए 1974 में एक समिति का गठन किया इस समिति की रिर्पोट के अनुसार 1911 से भारतीय महिलाओं की स्थिति विकास के हर क्षेत्र में

बद–से बदतर होती जा रही है। लिंग आधारित भेदभाव रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा और राजनीतिक भागीदारी आदि क्षेत्रों में साफ नजर आया।

इस दशक में नई पीढ़ी की मध्यम वर्गीय महिलाएं जो कि सार्वजनिक जीवन में अलगाव और अयोग्यता को महसूस कर रही थी, ने ''महिला प्रश्नों'' को नई सोच प्रदान की। 1970 का मध्यकाल भारतीय राजनीति के लिए एक विभाजक रेखा था। जहाँ काग्रेंस ने इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में लोकप्रिय राजनीति के नए दौर का उदघाटन किया वहीं मुख्यधारा की राजनीतिक संस्थाओं के लोकतान्त्रिक आधार को धीरे–धीरे और बढ़ावा मिला। साथ ही संगठित स्थानीय और लोकप्रिय आन्दोलनों की श्रृंखला की बाढ़ आ गई। यह नए सामाजिक आन्दोलनों की शुरूआत का दौर था जिसमें महाराष्ट्र का शाहदा आन्दोलन प्रथम था। 1972 में गाँधीवादी समाजवादी इला भट्ट ने स्वरोजगार महिलाओं का संघ स्थापित किया। 1973 में महिलाओं ने बड़े पैमाने पर कीमतों में वृद्धि के विरोध और उपभोक्ता संरक्षण के लिए आन्दोलन किया। इस वक्त तक महिला संगठन स्थापित करने की शुरूआत हो चुकी थी जो पूरी तरह से आजादी पूर्व के आन्दोलनों से भिन्न थे। नये संगठन स्थानीय मुद्दों के ईद–गिर्द कठोरता से बुने हुए थे जो अपने उद्देश्य पर केन्द्रित थे। नव महिला आन्दोलनों ने 1975 में आपातकाल के विरूद्ध भी आवाज उठाई। 1978 तक कई नगर आधारित संगठन स्थापित होने लगे थे जिनमें से कुछ की जड़े वामपंथी राजनीति से गहराई से जुड़ी हुई थी। ये स्वायत्त संगठन महिला मुद्दों पर चेतना जगाने पर केन्द्रित थे। इसके साथ ही कुछ स्थानीय आन्दालनों जैसे – चिपको आन्दोलन जिससे पर्यावरणीय नारीवाद का जन्म हुआ और बोधगया आन्दोलन जिसमें महिलाओं के भूमि अधिकारों की मांग की गई थी – का जन्म हुआ।

यह महिला राजनीति के लिए स्वचेतना जगाने वाले वायदों का दौर था। इन आन्दोलनों का राष्ट्रीय चरित्र मथुरा बलात्कार केस के दौरान राष्ट्रव्यापी समर्थन में देखा गया। 1980 के मध्य में

जहाँ शाहबानों केस के बाद समान नागरिक संहिता स्थापित करने की मांग उठ रही थी वहीं इसी दौरान राजनीति और सामाजिक क्षेत्र में एक परिवर्तनकारी भूमिका के लिए महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता पर बल दिया जा रहा था। हालांकि महिला आन्दोलन को इसका श्रेय जाता है कि उन्होंने बड़े स्तर पर महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित कराया। परन्तु महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़ाने के लिए आरक्षण को एक उपाय के रूप में अपनाने को लेकर महिला आन्दोलन के अन्दर एक विभाजन रहा है। जहां महिला आन्दोलन के अन्दर एक वर्ग का कहना है कि इससे महिलाओं की राजनीति में भागीदारी बढ़ेगी वहीं दूसरे का कहना है कि महिला आरक्षण महिलाओं को राजनीति की मुख्यधारा से अलग कर देगा जिसके जवाब में आरक्षण के समर्थकों का कहना है कि अनुसूचित जाति और जनजाति को प्राप्त आरक्षण ने उन्हें राजनीति की मुख्यधारा से बाहर करने के स्थान पर राजनीतिक व्यवस्था पर उनका दबाव बनाने में मदद की है। आरक्षण के बिना दलित और उनके मुद्दे सार्वजनिक बहस से वंचित रह जाते।[48]

जनता दल एम.एल.ए. सरोज काशिकर का कहना है कि आरक्षण कोई लक्ष्मण रेखा नहीं है जिसके कारण महिलाएं सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों से बाहर रह जाएंगी। वहीं रिपब्लिकन पार्टी की तरफ से लोकसभा उम्मीदवार रही नीलम गौर ने कहा कि स्थानीय स्तर पर महिला आरक्षण द्वारा महिलाएं अपनी राजनीतिक क्षमता को सिद्ध कर पाएंगी। जबकि शैक्षिक विशेषज्ञ और महिलाओं की स्थिति की जांच के लिए बनी समिति की सदस्य वीना मजूमदार और लोतिका सरकार शासन के सभी स्तरों पर महिला आरक्षण की पक्षधर रहीं। महिला आरक्षण की समर्थक महिलाओं के अनुसार महिला आरक्षण न सिर्फ महिलाओं में आत्मविश्वास पैदा

[48] Nandita Shah & Nandita Gandhi, *The Quota Question: Women and Electoral Seats*, An Akshara Publication, Bombay, 1992, pp.2-17.

करेगा बल्कि इससे महिलाओं में जिम्मेदारी की भावना भी आएगी। महिलाएं महिला मुद्दों के प्रति संवेदनशील होंगी और अन्य महिलाओं के लिए प्रेरणा का कार्य करेंगी।

जबकि दूसरी तरफ कुछ स्वायत्त महिला संगठन जिसमें मार्क्सवाद लेनिनवाद से जुड़े समूह भी शामिल हैं, महिला आरक्षण को सिर्फ एक ध्यान आकर्षित कराने वाला उपाय बता रहे हैं उनके अनुसार सरकार स्वयं पितृसत्तात्मक संरचना को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है और इधर से ध्यान हटाने के लिए वो आरक्षण को एक माध्यम के रूप में अपना रही है। साथ ही इससे सिर्फ सम्पन्न घरानों और राजनीति में सक्रिय परिवारों की महिलाएं ही आगे आएंगी। जो महिला हितों को आगे बढ़ाने में सहायक नहीं होंगी। वो राजनीतिक अनुभव और विचारधारा से रहित होगी और पार्टी संगठन में भी पितृसत्तात्मक ढांचे के विरोध में आवाज नहीं उठा पाएंगी। साथ ही यह सामाजिक संरचना में परिवर्तन के बिना महिलाओं पर कार्य का दोहरा भार होगा और वो उसी में उलझ कर रह जाएगी।

आरक्षण के विरोध की आवाजों में महिलाओं की स्थिति की जांच के लिए 1974 में गठित समिति की अध्यक्ष फूलरेनू गुहा और मनिबेन कारा भी शामिल थीं जिनके अनुसार यह पीछे की ओर जाने वाला कदम है। महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था यह सिद्ध करेगी कि महिलाएं कमजोर हैं साथ ही यह कुछ सम्पन्न परिवारों की सम्पन्नता में वृद्धि करेगा और यदि एक बार महिला आरक्षण दे दिया गया तो इससे पीछे हटना मुश्किल हो जाएगा।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि यद्यपि समाज सुधार आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की स्थिति सुधारने और उन्हें आगे बढ़ाने के प्रयास किए गए परन्तु उनकी लैंगिक भूमिका में परिवर्तन के बारे में नहीं सोचा गया। उन्हें वही स्त्रीपरक भूमिका दी गई और यही वजह रही कि आजादी के बाद समान अधिकारों के बावजूद महिलाओं की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आया। 1970 के बाद से महिलाओं से जुड़े अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों के साथ महिलाओं की राजनीतिक

भागीदारी बढ़ाने पर जोर दिया जा रहा है और आरक्षण को इसके एक उपाय के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। अगले अध्याय में महिला आरक्षण के इतिहास और 1974 के बाद महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी बढ़ाने के लिए किए जा रहे विभिन्न प्रावधानों और महिला आरक्षण व्यवस्था पर चर्चा की जाएगी।